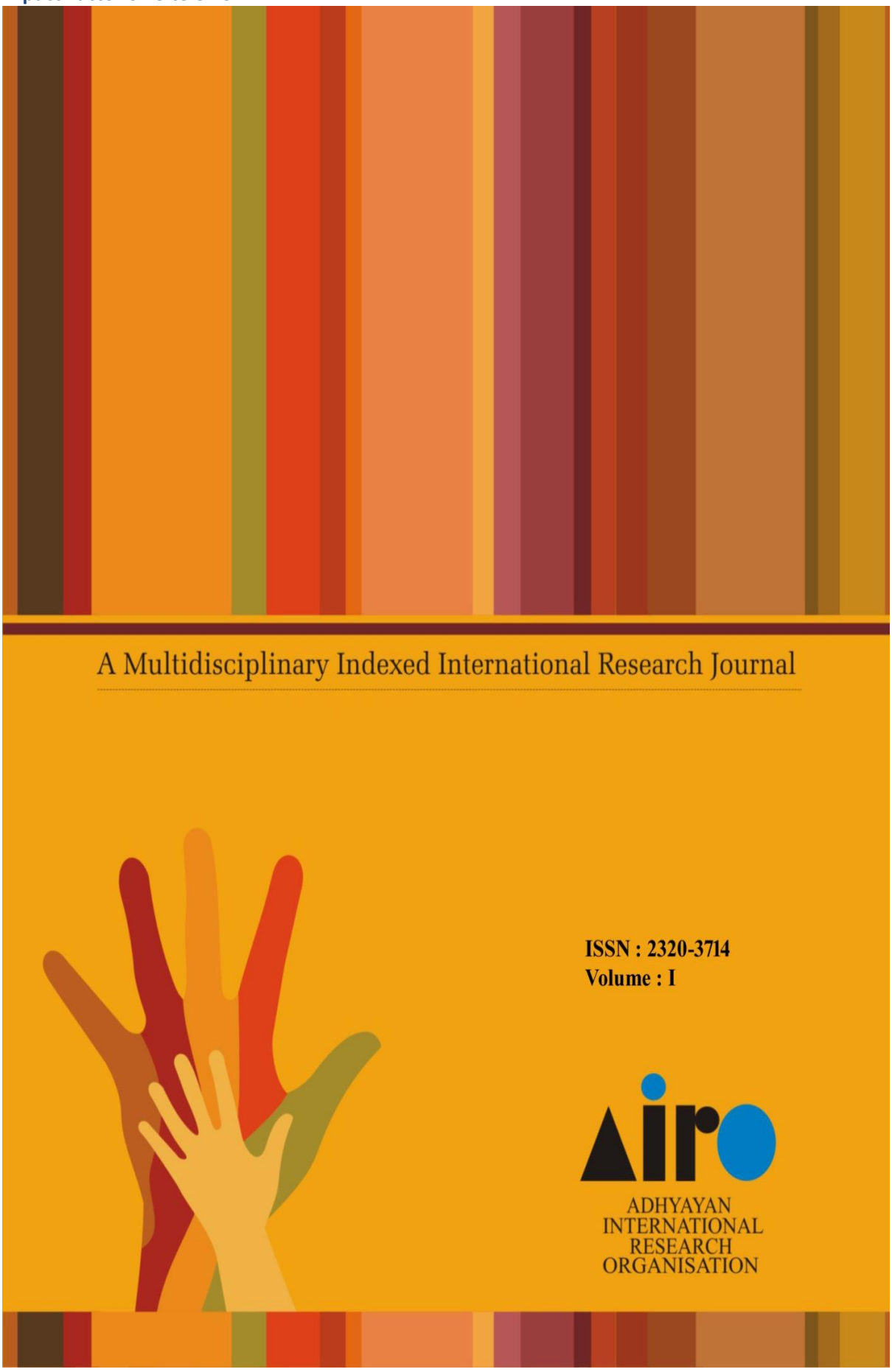
A Multidisciplinary Indexed International Research Journal
ISSN : 2320-3714
Volume : I
Airo
ADHYAYAN
INTERNATIONAL
RESEARCH
ORGANISATION

Airo International Research Journal March, 2013
Volume I, ISSN: 2320-3714
Impact Factor 0.75 to 3.19

शिक्षा के क्षेत्र में छात्र / छात्राओं का विकास

Dr. Krishna Kumar Thakur

Asst. Professor Hindi Century Cement College Baikunth (C.G.) Dist. Raipur

Declaration of Author: I hereby declare that the content of this research paper has been truly made by me including the title of the research paper/research article, and no serial sequence of any sentence has been copied through internet or any other source except references or some unavoidable essential or technical terms. In case of finding any patent or copy right content of any source or other author in my paper/article, I shall always be responsible for further clarification or any legal issues. For sole right content of different author or different source, which was unintentionally or intentionally used in this research paper shall immediately be removed from this journal and I shall be accountable for any further legal issues, and there will be no responsibility of Journal in any matter. If anyone has some issue related to the content of this research paper's copied or plagiarism content he/she may contact on my above mentioned email ID.

सारांश:

नई शिक्षा नीति के अंतर्गत विभिन्न क्षेत्रों में कदम उठाए गए हैं जिनमें से ''अध्यापकोकी जबाबदेही'' विषय विचारणीय है। अतः आज के परिवेश में इस पर विचार करना समीचीन प्रतीत होता है।शिक्षा के प्रतिवर्ष गिरते स्तर के लिए शिक्षक को जिम्मेदार माना जाता है। किसी भी कार्य की गुणवता बहुत कुछ जबाबदेही पर निर्भर करती है। जबाबदेही के अभाव में शिक्षण कार्य की प्रवृत्ति भी ऐच्छिक हो जाती है। बालक के व्यक्तित्व का विकास अध्यापक और उसकी जबाबदेही पर निर्भर करता है। किसी भी विद्यालय का भवन, पाठ्यक्रम तथा पर्यावरण कितना भी प्रभावशाली क्यों न हो जब तक शिक्षक कर्तव्यनिष्ठ तथा जवाबदेह नहीं होगें विद्यालय की उन्नति तथा शिक्षण स्तर ऊपर नहीं उठ सकता।यह एक अजीब घाल–मेल की स्थित में पड़ी हुई है। अतएव स्पष्ट शब्दों में यह कहा जा सकता हैं कि माध्यमिक शिक्षा का सामंजस्य उच्च तथा व्यवसायिक शिक्षा से तब तक सम्भव नहीं हो सकता है, जब तक की इसे स्वतंत्र इकाई के रूप में स्वीकार करते हुए इसकी प्रकृति को मनोवैज्ञानिक नियमों सिद्वान्तों के अनुरूप ढाला नहीं जायेगा।

हमारे देश में माध्यमिक शिक्षा में सैद्वान्तिक अस्पष्टता का भी दोष पाया जाता है। सभी देशों में सामान्य शिक्षा का उद्देश्य बालकों को उन प्रविधियों से अवगत कराना है, जिससे की उन्हें आगे की शिक्षा प्राप्त करने में सुगमता हो तथा अपने वातावरण के उत्तरदायित्वों को समझने तथा जीवन निर्वहन करने के योग्य बनाना है। इसके उपरान्त माध्यमिक शिक्षा पूर्ण रूप से विशिष्ट होती है। इसके विशिष्ट होने के दो प्रधान कारण हैं– पहला यह है कि माध्यमिक शिक्षा छात्रों को मध्यम् स्तर के व्यवसायों के योग्य बनाती है और दूसरे यह है कि माध्यमिक स्तर पर छात्र उन विधियों, प्रविधियों तथा उपकरणों को समझ जाता है जिनका उपयोग वह उच्च शिक्षा के लिए करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि सामान्य शिक्षा समाजोन्मुखी होती है और व्यवसायिक शिक्षा व्यवसायोन्मुखी किन्तु हमारे देश में माध्यमिक शिक्षा न तो छात्रों को व्यवसायिक जीवन के लिए तैयार करती है और न उन्हें उच्च शिक्षा के लिए ही सक्षम बनाती है।

प्रस्तावना:

बच्चों में जीवन मूल्यों के विकास हेतु ज्यादा सिखाना जिससे उनमें निम्न गुणों का विकास होता है भरोसेमंदी, विश्वसनीयता, गहराई, निंश्चिंतता, परवाह, करना, चरित्र निर्माण का अहसास, निष्ठा, उत्तरदायित्व, वफादारी, ईमानदारी, साहस आदि।

''भारत में शिक्षण व्यवसाय का समाज शास्त्र'' था । इसमें शिक्षा के सभी पक्षों यथा शिक्षा के व्यवसायीकरण, शिक्षक प्रशिक्षण कक्षा शिक्षण, शिक्षकों के उत्तरदायित्व, शिक्षकों का वर्तमान समाज में स्थान आदि पर चर्चा की गई। कि –''शिक्षा और राष्ट्रीय उद्देश्य में घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय समाज की परिस्थितियों और व्यवस्थाओं में अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन आए उनके फलस्वरूप भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों कार्यक्रमों और व्यवस्थाओ में भी परिवर्तन आ रहे है। इन परिवर्तनों के

सदंर्भ में जब एक शिक्षक के कार्य विषय में सोचते है। तो ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षक अब अपने परम्परागत कार्य को ही करके अपने उत्तरदायित्व की इतिश्री नहीं समझ सकता, क्योंकि अब उसे अनेक कायों और कर्त्तव्यों को पूर्ण करना हैं । शिक्षकों के मूल्यों में आमूलचूल परिवर्तन आए बिना शिक्षकों तथा शिक्षा व्यवस्था की समस्याओं का आधुनिक सामाजिक सदंर्भ में कोई सतोंषप्रद हल नहीं निकल सकता। शिक्षकों को यह सोचना आवश्यक है कि वर्तमान भारतीय समाज की आवश्यकताओं और विशेषताओ के सदंर्भ में वह किस प्रकार अपने इन दोनों प्रकार के कार्यों को समन्वित ढगं से सम्पादित कर सकता है।''

राष्ट्रीय शिक्षा नीति में कहा गया है कि शिक्षक को अपने कार्य करने की संस्था में कम से कम 40 घंटे प्रति सप्ताह उपस्थित रहना चाहिए रस्तोगी कमेटी के अनुसार ''योग्य व्यक्तियों को ही शिक्षण व्यवसाय में लाया जाना चाहिए। शिक्षक पूरे शिक्षण तंत्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

मानव विकास के इतिहास में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। मानव अपने जन्म–कालमें असहाय होता है, उसे जीवित रहने के लिए समायोजन की आवश्यकता होती है।समायोजन की इस प्रकिया में इसका सीखना प्रारम्भ होता है। सीखने की यह प्रक्रियाबालक के जन्म लेते ही प्रारम्भ हो जाती है और जीवन –पर्यन्त चलती रहती है। सर्वप्रथम बालक की शिक्षा का कार्य माता की गोद से प्रारम्भ होता है। इस प्रकार माँ प्रथमशिक्षिका होती है। माता के साथ–साथ बालक पिता के सम्पर्क में आता है। पिता भीउसके सीखने के कार्य में योगदान देता है। इस प्रकार धीरे–धीरे शिक्षा कार्य का दायित्वपूरे परिवार का हो जाता है। जब सामाजिक ढ़ाँचें का निर्माण हुआ तो शिक्षा कार्य समाजका महत्वपूर्ण अंग बन गया। समाज द्वारा शिक्षा प्रदान करने का दायित्व समाज के कुछविशिष्ट व्यक्तियों को दिया गया जिन्हें शिक्षक अथवा अध्यापक कहा जाने लगा।

शिक्षाग्रहण करने वाले व्यक्ति को विद्यार्थी अथवा छात्र कहा गया है। विद्यार्थी सुयोग्य अध्यापकोंके पथ–प्रदर्शन में ही अपने श्रेष्ठतम् विकास को प्राप्त करता है। शिक्षार्थी बहुत कुछअध्यापकों के व्यवहारों एवं आदर्शों के अनुकरण द्वारा भी सीखते हैं। इस प्रकार देश औरकाल के अनुरूप बालकों को शिक्षा प्रदान कर अध्यापक उन्हें इस योग्य बनाता है कि वेभविष्य में राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया में अपनी भूमिका का उचित निर्वाह कर सकें।

इस प्रकार विद्यार्थी राष्ट्र के भविष्य का निर्माणकर्ता एवं आधार स्तम्भ होता है। यदि अध्यापक द्वारा छात्र की वैयक्तिक भिन्नताओं को ठीक से न समझा गया तो अध्यापक द्वारा दी गयी शिक्षा से छात्र के आन्तरिक व वाह्य शक्तियों का पूर्ण रूप से विकास कदापि सम्भव नहीं हो सकेगा। अतः शिक्षक को छात्र–छात्राओं के वैयक्तिक भिन्नताओं के अन्तर्गत उनके जीवन मूल्य अभिवृत्ति, योग्यता, क्षमता, सामाजिक परिपक्वता, आत्मविश्वास तथा कुण्ठा ग्रस्तता आदि को समझना अत्यन्त आवश्यक है जिससे कि वह समयानुकूल विद्यार्थी के व्यक्तित्व को प्रेरक व मौलिक बना सके।

साहित्य की समीक्षा:

शिक्षा के सम्बन्ध में स्वामी जी की मानना था कि ज्ञान मनुष्य में निहित है, वह कहीं बाहर से नहीं आता । उन्हीं के शब्दों में– ''शिक्षा मनुष्य में अन्तर्निहित पूर्ण की अभिव्यक्ति मात्र है।'' उन्होंने अन्यत्र कहा है सब ज्ञान मनुष्य के मस्तिष्क से उत्पन्न होता है। अनन्त पुस्तकालय आपके मस्तिष्क में ही है। इसका अर्थ यह है कि ज्ञान बीज रूप में मनुष्य के मस्तिष्क में पहले से ही रहता है। शिक्षक का कार्य केवल उसका पोषण करना होता है, ताकि वह अंकुरित हो सके और बढ़ सके। शिक्षा के वाह्य तत्व जैसे कि अध्यापक और पाठ्य पुस्तक केवल उसे वह पृष्ठभूमि प्रदान करते है जिसके सहारे ज्ञान बीज जो पहले से ही मस्तिष्क में छिपा है, बढ़ता ळेंस्वामी विवेकानन्द ने शिक्षा को जन साधारण में जागृति उत्पन्न करने का सर्वोत्तम साधन माना है। इस संदर्भ में उनका कथन था कि शिक्षा से मेरा तात्पर्य आधुनिक शिक्षा प्रणाली से नहीं वरन् ऐसी शिक्षा से है जिससे स्वाभिमान और श्रद्धा का भाव जाग्रत हो उन्होंने भारतीय जनता के पिछड़े होने का कारण अज्ञानता माना उन्होंने तत्कालीन शिक्षा प्रणाली को लिपिक उत्पन्न करने वाली सर्वोत्तम मशीन कहा और उसकी कटु आलोचना की उस समय की प्रचलित शिक्षा को उन्होंने देश के आवश्यकताओं के प्रतिकूल बताया और उसे नकारात्मक ज्ञान की संज्ञा दी।

स्वामी विवेकानन्द ने भारतीयों के अन्दर अद्भुत साहस एवं कर्मठता की भावना उत्पन्न करके सामाजिक समानता राष्ट्रीय एकता और राष्ट्रीय स्वतंत्रता का परोक्ष या अपरोक्ष रूप से समर्थन करके तथा सबसे बढ़कर भारतवासियों का उनकी आध्यात्मिक और धार्मिक गुरूता के प्रति विश्वास जाग्रत करके उनके राष्ट्रीय स्वाभिमान के भाव को उच्च स्तर पर पहुंचाकर तथा भारत का इग्लैण्ड के

समक्ष समान स्तर पर खड़ा होना सिखाकर आधुनिक भारत के पुनर्जारण में महत्वपूर्ण योगदान दिया।स्वामी विवेकानन्द के ह्रदय में जनसाधारण के प्रति असाधारण सहानुभूति थी उन्होंने कहा है कि– ''जब तक करोड़ो लोग भूख और अज्ञानता का जीवन व्यतीत करते हैं प्रत्येक उस व्यक्ति को देशद्रोही समझता हूँ जो उन्हीं के मूल्य पर शिक्षित होकर उनकी ओर किंचित भी ध्यान नहीं देता।9

शिक्षा के स्वरूप महत्व आवश्यकता तथा इसकी उपादेयता के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों मनीषियों के मत–मतान्तर को समझने के पश्चात् शोध समस्या की दृष्टि से माध्यमिक स्तर की शिक्षा तथा उसके स्वरूप को समझ लेना नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है।

कार एंड हंटर के अनुसार– ''शैक्षिक प्रक्रिया में प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा पर हुए व्यय का प्रभावी ढंग से उपयोग के लिए जिम्मेदार है।'' राजन् एवं धुन्ना के अनुसार जबाबदेही प्रत्येक व्यक्ति को सौंपे गये उत्तरदायित्व के निष्पादन के सदर्भ में प्रतिवेदन आधारित होती है।

जॉन पोर्टर के अनुसार – जबाबदेही इस बात की गारंटी से सम्बन्धित है कि सभी विद्यार्थी बिना जातिगत भेद, सामाजिक स्तर की भिन्नता तथा आर्थिक स्तर के विद्यालय की सभी सुविधाओं का लाभ उठा सकें। जबाबदेही एक प्रक्रिया है उद्देश्य निर्धारण एवं उनके प्राप्त करने में उपयुक्त साधनों की उपलब्धता की तथा नियमित रूप से मूल्याकंन की पूर्व निर्धारित उद्देश्य प्राप्त हुए अथवा नहीं,।

श्रीवास्तव ने जबाबदेही को परिभाषित इस रूप में किया है कि शिक्षकों द्वारा नियोक्ता एवं समाज के प्रति शपथ से है कि वे उत्तम निष्पादन कर सकेगें। डॉर्लिंन हैमांड तथा एसचर के अनुसार जबाबदेही प्रतिबद्धताओं का एक सैट है तो कि निम्न बातों से संबंधित है–

♦कि विद्यार्थियों को सीखने के उत्तम अनुदेशनात्मक तरीकों को अपनाया जाएगा।

♦हानिप्रद व्यवहारों को कम किया जाएगा।

♦ स्वयं को आंतरिक रूप से सही रूप में पहचानने की क्षमता प्रदान की जाएगी।

इसी प्रकार ड्रकर ने जबाबदेही को परिणाम प्राप्ति के उत्तरदायित्व से आंका है, लेविन ने किसी के भी प्रति निष्ठा तथा उत्तर देने की जिम्मेवारी माना है, एकेनेमी के अनुसार विद्यालयों में जबाबदेही से तात्पर्य शिक्षकों द्वारा सरकार द्वारा शिक्षा पर किए गए व्यय का लाभप्रद उपयोग से हैं।

सभी शैक्षिक व्यवस्थाऐं किसी न किसी प्रकार की जबाबदेही की मान्यता रखती हैं चाहे वह सरकारी हों या गैर सरकारी। शिक्षा के उद्धेश्यों को प्राप्त करने हेतु सभी की जबाबदेही निश्चित की गई है जिससे सभी घटक अपनी जिम्मेदारी का पूर्ण कर्त्तव्य परायणता से पालन करें।

शिक्षक की जबाबदेही का आयाम यद्यपि एक पूर्ण मानक इकाई नहीं है तथापि

इतना निश्चित है कि यदि शिक्षक स्वमूल्यांकन करते हुए अध्ययन अध्यापन करे तो जबाबदेही की कसौटी पर खरा उतर सकता है। अतः शिक्षकों का उत्तरदायित्व है कि वे बदलते शिक्षा मूल्यों के अनुरूप स्वयं को अद्यतन करते हुए नए जोश एवं नई उमंग के साथ अपनी योग्यतम शैक्षिक क्षमताओं से भावी पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त करें क्यो ंकि 21वीं सदी में भारत को हर क्षेत्र में विश्व का सिरमौर बनना है। देश की इस अपेक्षा को शिक्षा प्रक्रिया में शिक्षकों की सक्रिय और सघन भूमिका ही पूरा कर सकती है। परन्तु साथ में उन्हें वर्तमान सदी की आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखना होगा। आज देश में सूचना तकनीक का जाल बिछ गया है। इसने हर क्षेत्र में प्रगति के नए द्वार खोल दिए हैं किन्तु इनमें प्रवेश हेतु शिक्षक की जिम्मेवारी बढ़ जाती है।

शिक्षा के सभी घटकों में शिक्षक की अधिक महत्वपूर्ण जिम्मेदारी मानी गई है। शिक्षक को राष्ट्र निर्माता, समाज मार्गदर्शक एवं संस्कृति पोषक माना गया है। शिक्षक संस्कार रूपी जड़ों में खाद देकर महाप्राण शक्तियाँ बनाते हैं। हर बालक में अंतनिर्हित शक्तियाँ होती हैं। उन गुणों को अंकुरित करने में शिक्षक का महान योगदान होता है। शिक्षक विद्यार्थियों के लिए आदर्श होते हैं जिसका अनुगमन करते हुए विद्यार्थी अनायास ही शालीनता के साँचे में ढलने लगते हैं। वह बालक को ऐसी दृष्टि प्रदान करता है जो आगे चलकर जीवन में उन्हें महान बनाते हैं। शिक्षक मर्यादित उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुए शिक्षारूपी संजीवनी का संचार करके महामंडित होता है। शिक्षक की महानता, गरिमा व गौरव का सीधा संबंध कर्तव्यनिष्ठ सेवा से है।

शक्षक की जबाबदेही का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत तथा गंभीर है फिर भी वे पाठ्यक्रम पूरा कराने, परीक्षा संबंधी तैयारी, उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करने, प्रगतिपत्र तैयार करने आदि तक ही अपना उत्तरदायित्व मानते हैं। वस्तुतः शिक्षक के उत्तरदायित्व किसी निश्चित सीमा में आबद्ध नहीं किए जा सकते। दैनिक डायरी भरना, पाठ योजना निर्मित करना, प्रार्थना सभा का संचालन करना, उपस्थिति रजिस्टर तैयार करना, शिक्षण कार्य करना, गृहकार्य जांचना, मूल्यांकन करना, सहशैक्षिक व शैक्षिक गतिविधियाँ आयोजित करना आदि अनेक ऐसे कार्य हैं जो स्वतः ही अध्यापन व्यवसाय से जुड़े हैं।

माध्यमिक शिक्षा

शिक्षा एक सतत् चलने वाली प्रक्रिया है जिसका न कोई आदि है न अन्त। मानव जन्म से लेकर अपने अस्तित्व के धूमिल होने तक शिक्षारत रहता है। बस यदि कुछ बदलता है तो वह शिक्षा का स्वरूप प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा, व्यवसायिक एवं तकनीकी शिक्षा इत्यादि किन्तु विवेचन करने से स्पष्ट होता है कि शिक्षा में माध्यमिक शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण स्तर है। यह प्राथमिक और उच्च शिक्षा के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने वाली कड़ी है। इस शिक्षा का सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था में विशेष

महत्व है। किशोर बालक–बालिकाओं में ज्ञानवर्धन के साथ–साथ सामाजिक सद्गुणों का विकास अधिकारों एवं कर्तव्यों का ज्ञान राष्ट्रीय एकता एवं अखण्डता के प्रति जागरूकता, आत्म निर्भता और आत्म विश्वास आदि चारित्रिक गुणों का विकास करना माध्यमिक शिक्षा का मूल उद्देश्य है।

शिक्षा आयोग (1964–66) ने माध्यमिक शिक्षा को दो भागों में विभाजित किया है। ये दो भाग हैं निम्न माध्यमिक शिक्षा तथा उच्च माध्यमिक शिक्षा। माध्यमिक शिक्षा के उपरान्त ही बालक उच्च शिक्षा में प्रवेश करता है। माध्यमिक शिक्षा स्तर प्राथमिक तथा उच्च शिक्षा स्तरों के बीच स्थित होने के कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसके तीन प्रमुख कारण हैं। प्रथम माध्यमिक शिक्षा सामान्य शिक्षा की परिसमाप्ति है। बालक के विकास की किशोरावस्था से सम्बन्धित होने के कारण तथा युवा शक्ति के नेतृत्व प्रशिक्षण का केन्द्र होने के कारण माध्यमिक शिक्षा राष्ट्र की सामाजिक आर्थिक तकनीकी तथा सांस्कृतिक क्षमता को सर्वाधिक प्रभावित करती है। द्वितीय माध्यमिक शिक्षा रोजगार तथा जीवन–यापन के क्षेत्र में प्रवेश का द्वार खोलती है। किसी भी राष्ट्र की मानव शक्ति का एक बहुत बड़ा भाग माध्यमिक शिक्षा स्तर से ही प्राप्त होता है। तृतीय माध्यमिक शिक्षा प्राथमिक शिक्षा व उच्च शिक्षा स्तरों की गुणवत्ता को निर्धारित करती है। प्राथमिक स्कूलों के अधिकांश अध्यापक माध्यमिक शिक्षा प्राप्त होते हैं तथा उनकी शिक्षा की गुणवत्ता काफी सीमा तक प्राथमिक शिक्षा की गुणवत्ता को प्रभावित करती है। इसी प्रकार से विश्व विद्यालयों, महा विद्यालयों तथा अन्य उच्च शिक्षा के केन्द्रों के लिए छात्रों की पूर्ति का कार्य भी माध्यमिक शिक्षा करती है। उच्च शिक्षा के लिए माध्यमिक शिक्षा आधार–शिला का कार्य करती है। स्पष्ट है इन तीनों दृष्टियों में माध्यमिक शिक्षा सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग है। माध्यमिक शिक्षा के इस महत्व के कारण ही इसे शिक्षा रूपी जीव को रीढ़ की हड्डी भी का जाता है। जिस प्रकार से रीढ़ की हड्डी मनुष्य के सम्पूर्ण शरीर को सम्हाले रहती है ठीक उसी प्रकार से माध्यमिक शिक्षा भी सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था को संभालती है। यदि माध्यमिक शिक्षा की गुणवत्ता श्रेष्ठ होती है तो प्राथमिक शिक्षा उच्च शिक्षा तथा तकनीकी व व्यवसायिक शिक्षा भी गुणात्मक दृष्टि से श्रेष्ठ होती है। अतः यह आवश्यक है कि माध्यमिक शिक्षा सम्पूर्ण शिक्षा क्रम की एक मजबूत कड़ी हो।

माध्यमिक शिक्षा आयोग

माध्यमिक शिक्षा आयोग के सम्बन्ध में डा0 आत्मानन्द मिश्र ने कहा है, ''देश के भावी कर्णधार माध्यमिक शिक्षा के ढाँचे में बनते और बिगड़ते हैं। उनमें नेतृत्व करने की क्षमता इसी स्तर पर उत्पन्न की जाती है। दुर्भाग्यवश शिक्षा की यह कड़ी जितनी महत्वपूर्ण और अनिवार्य है उतनी ही निर्बल और उपेक्षित भी'' आयोग ने माध्यमिक शिक्षा की अनेक कमियों को गिनाते हुए कहा–''माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य उच्च शिक्षा के लिए तैयारी मात्र

है'' आयोग ने इसे उद्देश्य पूर्ण बनाने के लिए व्यवसायिक स्कूलों की स्थापना, परीक्षा प्रणाली, अध्यापक, प्रशिक्षण एवं शिक्षकों की स्थिति में सुधार आदि पर बल दिये जाने का सुझाव दिया।

वर्तमान शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति लाने का श्रेय मनोविज्ञान को है। शिक्षा में मनोवैज्ञानिक प्रकृति के विकास के फलस्वरूप शिक्षा को बाल कन्द्रित बनाने का प्रयास किया गया और शैक्षिक समस्याओं का अन्त करने के लिए शिक्षा शास्त्रियों ने शिक्षा के क्षेत्र में मनोवैज्ञानिक सिद्वान्तों पर बल दिया। आज शिक्षा का अर्थ बालक को केवल सूचना प्रदान करना नहीं समझा जाता। शिक्षा शब्द की व्याख्या आज मनोवैज्ञानिक ढंग से की जाती है शिक्षा का कार्य बालक के व्यक्तित्व का स्वभाविक एवं संतुलित विकास करना है। मनोविज्ञान की सहायता से शिक्षा प्रक्रिया को अधिक रोचक और उपयोगी बनाया जा सकता है। साथ ही शिक्षण सम्बन्धी समस्याओं का समाधान भी किया जा सकता है। किन्तु यह सब तभी सम्भव है जब हम बालक के व्यक्तित्व सम्बन्धी विभिन्न विशिष्टताओं व उसकी विभिन्नताओं को ठीक से समझें। माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के सीखने में उनके सामाजिक परिपक्वता, आत्मविश्वास व कुण्ठा स्तर का अत्यधिक महत्व है। तीनों का कहीं न कही अन्तर्सम्बन्ध भी है। सामाजिक परिपक्वता तथा आत्मविश्वास का बढ़ा हुआ स्तर जहाँ बालक के व्यक्तित्व को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। वहीं कुण्ठा का बढ़ा हुआ स्तर नकारात्मक रूप से बालक के व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। ऐसी स्थिति में इन तीनों चरों (विशेषताओं) की प्रकृति व उनके सैद्धान्तिक स्वरूप को समझना परम आवश्यक है।

प्राचीन कालीन भाारतीय प्राथमिक शिक्षा (600 ई0पूव)

डा0 ए.एस. अल्तेकर के अनुसार– ''प्राचीन भारत में लगभग 400 ई0 पू0 से पहले प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी, प्राचीन काल में शिक्षा घर पर ही दी जाती थी। परिवार ही शिक्षा का केन्द्र था।''20 बाद में गुरूकुल में शिक्षा दी जाने लगी थी। प्राथमिक शिक्षा में बालकों को पहले वेदमन्त्र का उच्चारण करना, बोलना सिखाया जाता था। मंत्रों को कंठस्थ करने के बाद उन्हें पढ़ने और लिखने की शिक्षा दी जाती थी। इस युग में ब्राम्हण, क्षत्रिय और वैश्य को ही शिक्षा दी जाती थी। शुद्र शिक्षा से वंचित रहते थे। इस युग में पुरूषो के समान स्त्रियों को भी शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार था। सह शिक्षा की भी व्यवस्था थी। शिक्षा निःशुल्क थी 5 वर्ष की आयु में प्रवेश तथा अध्ययन की अवधि 6 वर्ष तक थी।

बौद्ध कालीन शिक्षा (500 ई0पू0 से 1200 ई0 तक)–

बौद्धकालीन शिक्षा वैदिक काल से मिलती जुलती थी। परन्तु उस युग की मान्यताओं में अन्तर आ गया था। बौद्ध कालीन शिक्षा धर्म प्रधान थी। यह दो स्तरों क्रमशः धार्मिक शिक्षा, और उच्च शिक्षा में

विभाजित थी। बौद्ध शिक्षा के द्वार सभी धर्मों, वर्गों एवं जातियों के लिए खुले थे परन्तु बौद्ध धर्म अपनाना अनिवार्य था। सातवीं शताब्दी में भारत आने वाले चीनी यात्री आइसांग के अनुसार –प्राथमिक शिक्षा आरम्भ करने की आयु 6 वर्ष थी।

चीनी यात्री ह्वेनसांग ने प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम का वर्णन किया है कि बालक को प्रथम 6 माह में ''सिद्धिरस्तु'' नामक बालपोथी पढ़नी पड़ती थी 16 माह बाद बालक को पॉच विद्याओं– शब्द विद्या चिकित्सा विद्या, अध्यात्मविद्या, शिल्प विद्या, स्थान विद्या, की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा का माध्यम पाली भाषा थी।

भारत में मध्यकालीन प्राथमिक शिक्षा (मुस्लिम शिक्षा) (1200 ई0 से 1700 ई0 तक)

इस युग में शिक्षा प्रसार का प्रमुख उद्देश्य इस्लाम धर्म और मुस्लिम संस्कृति का प्रसार करना था। प्रारम्भिक शिक्षा चार वर्ष चार महीने चार दिन की आयु में मकतबों में प्रारम्भ की जाती थी और उच्च शिक्षा मदरसो में दी जाती है। शिक्षा निःशुल्क थी, स्त्री शिक्षा का अधिक प्रचलन नहीं था। मुस्लिम युग में हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों में व्यवसायिक शिक्षा तथा अनुशासन पर बल दिया जाता था। इस शिक्षा का प्रमुख गुण यह था कि इसमें लौकिक विषयों की प्रधानता दी जाती थी और चरित्र निर्माण पर बल दिया जाता था। आलिम और फाजिल की उपाधि महत्वपूर्ण थी इस शिक्षा के फलस्वरूप इतिहास लिखने की प्रवृत्ति का विकास हुआ। इस शिक्षा व्यवस्था का प्रमुख दोष यह था कि जनसाधारण की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। शिक्षा केवल उच्च वर्ग तक ही सीमित था। उच्चवर्ग के ही शाही घराने की स्त्रियों की शिक्षा की व्यवस्था थी।

मुस्लिम शिक्षा की व्यवस्था केवल नगरों और कस्बों में की गयी थी जहाँ मुसलमानों की संख्या अधिक थी। इस युग में हिन्दुओं को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर कम मिल पाया। मुस्लिम शासकों द्वारा हिन्दुओं की शिक्षा की उपेक्षा की गयी।

ब्रिटिश कालीन प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था (1700 ई0 से 1947 तक)–

प्राचीन भारतीय शिक्षा मुसलमानो द्वारा पदक्रान्त की जा चुकी थी और मुस्लिम शिक्षा अपने संरक्षको के अभाव में डगमगा रही थी ऐसे समय में मिशनरियो ने एक नवीन शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात करके देश की जनता का अकथनीय हित किया।

मिशनरियों का मुख्य उद्देश्य यहाँ के निवासियों को ईसाई धर्म की शिक्षा देना था। मिशन स्कूलों ने भारतीय शिक्षा के प्रसार और विकास में महान योगदान किया। ईसाई मिशनरियों के साथ ही कुछ भारतीय शिक्षाशास्त्रियों ने भी शिक्षा का प्रसार किया। इसमें राजाराम मोहनराय, ईश्वरचन्दविद्यासागर, स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उनके प्रयास से भारत में अनेक प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना हुई और शिक्षा का प्रसार हुआ। आधुनिक शिक्षा का प्रारम्भ

का श्रेय ब्रिटिश शासन काल के मिशनरियों को प्राप्त है।

इस युग में शिक्षा की शुरूआत सन् 1835 में मैकाले के घोषणा पत्र से प्रारम्भ होता है। इस युग में शिक्षा का छनाई सिद्धान्त, वुड का घोषणा पत्र, भारतीय शिक्षा आयोग, हण्टर कमीशन, भारतीय विश्वविद्यालय आयोग, हर्टांग समिति, बेसिक शिक्षा, सार्जेन्ट रिपोर्ट का विशेष महत्व है।

उपसंहार:

शिक्षा का प्रथम एवं शाश्वत धर्म है ऐसी मानव संतति का सृजन करना जो नवीन के प्रति जिज्ञासु होए जिसमें ग्राह्यता का भाव हो, सृजनधर्मी, चिंतन, भविष्योन्मुख, मननशील हो साथ ही ऐसे मस्तिष्क का निर्माण करना जो स्वच्छ आलोचना करना तथा लक्ष्यों का सत्यापन करने में सक्षम हो, सत्य, असत्य में विभेद करने की विवेक क्षमता से युक्त हो। महान दार्शनिक जॉ प्याजे का कथन मार्गदर्शक का कार्य कर सकता है–''जब हम होने के लिए सीखने के स्थान पर निर्माण के लिए सीखने की शिक्षा प्राप्त करेंगे तभी जीवन पर्यन्त शिक्षा के सारत्व को मूर्त रुप प्रदान कर सकेगा।''

शिक्षा प्रगति का द्वार है। मानव को सच्चे अर्थों में मानव बनाने वाली शक्ति शिक्षा ही है। शिक्षा मानव के सर्वांगीण विकासार्थ संजीवनी का कार्य करती है। मानव विकास के विभिन्न आयामों के सापेक्ष शिक्षा को तीन स्तरों पर विभक्त किया गया है यथा प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा। वास्तव में प्रांरभिक शिक्षा, शिक्षा रूपी मूल का वृक्ष है, माध्यमिक शिक्षा इस वृक्ष का तना एवं उच्च शिक्षा इस वृक्ष के फूल और फल है। शिक्षा के दायित्वों को भली भांति वहन करने वाला व्यक्ति शिक्षक होता है।

शिक्षा द्वारा ही बालक के व्यक्ति का बहुमुखी विकास सम्भव होता है। यही कारण है कि शिक्षार्जन की दृष्टि से विद्यार्थी जीवन का महत्व सर्वविदित है। उच्च माध्यमिक स्तर के अधिकांश छात्र–छात्राएं किशोरावस्था में होते हैं। इस अवस्था को मनोवैज्ञानिकों ने अत्यन्त संवेदनशील व संवेगात्मक रूप से आस्थिर माना है। इस अवस्था में छात्र–छात्राओं के व्यक्तित्व में जब सामाजिक परिपक्वता व आत्मविश्वास की कमी हो जाती है तो वे शैक्षिक व व्यक्तिगत समस्याओं का सामना ठीक से नहीं कर पाते, जिससे उनमें कुण्ठा का भाव उत्पन्न हो जाता है। यह कुण्ठा उनके शैक्षिक निष्पत्ति को प्रभावित करती है जिसके कारण उनके विकास एवं समायोजन में बाधा उत्पन्न होती है। अनुशासनहीनता की समस्या भी कुण्ठा के कारण उत्पन्न हो जाती है। ऐसी स्थिति में विद्यार्थियों की सामाजिक परिपक्वता, आत्मविश्वास तथा कुण्ठा का उनके शैक्षिक निष्पत्ति से अन्तर्सम्बन्धों को समझना परम आवश्यक है। इसे भलीभाँति समझकर ही हम विद्यालय तथा घरो में छात्र–छात्राओं को ऐसा शैक्षिक एवं सामाजिक वातावरण दे सकेंगे कि उनके सामाजिक परिपक्वता एवं आत्मविश्वास का विकास हो सके तथा कुण्ठा उत्पन्न न हो।

संधर्भ ग्रन्थ सूची:

1. उ.प्र.सूचना एवं जन सम्पर्क विभाग,2006
2. चतुर्वेदी विराट विष्णु (1988), शिक्षक की जबावदेही, साहित्य परिचण, 16 सामयिक विशेषांक, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
3. चंद्रा एन.डी. (1994), ट्रांसपैरेंसी एंड एकाउंटिबिलिटी इन हायर एजूकेशन, टीचर एजू. एट एलीमेंट्री स्टेज, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्रा. लि. देहली।
4. उपाध्याय, हिमानी एण्ड भल्ला, डिम्पल, रोल आफ एजूकेशन फार फिजिकली हैण्डीकैप्ड प्यूपुल इन डवलपमेंट आफ सेल्फ कान्सेप्ट, सेल्फ कान्फीडेन्स, फ्रस्टेशन एण्ड डेप्रिवेशन, इण्डियन जर्नल ऑफ साइकोमेट्री एण्ड एजूकेशन बै0–37, छवण 2, 2006
5. कौर, तेसेन्दर एण्ड मेहता, मंदी, कम्प्रेटिव स्टडी ऑफ द लेवल आफ अचीवमेंट, मोटीवेशन सेल्फ कान्फीडेन्स एण्ड असरटिवनेस अमांग एडोल्मेन्ट गर्ल्स, इण्डिया जर्नल ऑफ साइकोमेट्री एण्ड एजूकेशन वैल्यूमम–38 छवण 2, 2007
6. कौल, लोकेश, मेथेडोलॉजी ऑफ एजूकेशन रिसर्च, न्यू देलही, विकास पब्लिसिंग हाउस प्रा0लि0, 2004
7. दवे आर. एच. (1998), काम्पीटेंसी वेस्ड एंड कमिटमेंट ओरियंटेड टीचर फॉर क्वालिटी स्कूल एजूकेशन, इनीसिएशन डॉक्यूमेंट एनसीटीई, न्यू देहली।
8. ख्वाजापीर एम. (1988), एकाउंटिबिलिटी इन टीचर एजूकेशन, दी इंडियन जर्नल फार टीचर एजूकेशन, वाल्यूम 1 नं.1 अगस्त।
9. कुण्डू एण्ड टुटू, एजूकेशन साइकोलॉजी, दिल्ली, स्टरलिंग पब्लिशर्स प्रा0लि0 2007
10. कपिल, डॉ0 एच0के0, सांख्यिकी के मूलतत्व, आगर–2, विनोद पुस्तक मन्दिर, 2008
11. अग्रवाल, एस.के.शिक्षा के तात्विक सिद्धान्त, मेरठ, राजेश पब्लिशिंग हाउस, 1980
12. लैसिजर एम.लिआन (1973), एकाउंटिबिलिटी एंड हयूमैनिज्म, ए प्रोडक्टिव एजूकेशनल काम्प्लीमेंटरली एकाउंटिबिलिटी सिस्टम प्लानिंग इन एजूकेशन, ई.टी.सी. पब्लिकेशन यू. एस.ए।
13. हौले जायसी एंड शावर्स प्रोफेशनल डवलपमेंट ऑफ टीचर्स प्रणति जर्नल ऑफ इंडियन एजूकेशन, वाल्यूम 29 नं.3 व 2003, एन.सी.ई.आर.टी नई दिल्ली
14. माहेश्वरी अमृता (2003), शिक्षक प्रतिबद्धता तथा अकादमिक आदर्श,

प्राइमरी शिक्षकः अंक 4, अक्टूबर, एन.सी.ई.आर.टी, देहली।

15. अग्रवाल, डा. गोपाल कृष्ण, सामाजिक नियन्त्रण एवं परिवर्तन, आगरा, आगरा बुक स्टोर, 1994

16. अग्रवाल, डा. जी.के.मानव समाज, आगरा, ओम प्रिन्टिंग प्रेस पचकुइंया, 1980

17. एम.देव सेनाधिपति (2001), ''ए गुड टीचर'' एजूकेशनल रिव्यू, सितम्बर। मुदालियर ए.एल. (1952–53), रिपोर्ट ऑफ सैकण्डरी एजूकेशन कमीशन, गर्वमेंट ऑफ इंडिया, न्यू देहली।

18. मयाशंकर सिंह (2007), अध्यापक शिक्षा असमंजस में, अध्ययन पब्लिशर्स, न्यू देहली।

19. नरेश कुमार (2003), बदलते सामाजिक परिप्रेक्ष्य में शिक्षा का स्वरूप और शिक्षक का दायित्व, प्राइमरी शिक्षक, अक्टूबर अंक 4, एन.सी.ई. आर.टीदेहली।

20- कपिल, एच.के., (2004) अनुसंधान विधियाँ (व्यवहारपरक विज्ञानों में) वेदांत पब्लिकेशन्स लखनऊ, अध्याय 12 पृ. 147–148, 368